ISBN 978-93-82504-69-6

संत साहित्यः अधुनातन आयाम

संपादक
डॉ.सिंधू रेड्डी-हालदे

Scanned with OKEN Scanner

संत साहित्यः अधुनातन आयाम

• संपादक •

डॉ.सिंधू रेड्डी-हालदे

अध्यक्ष हिंदी विभाग,
दगडोजीराव देशमुख कला वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,
वालूज, औरंगाबाद (महाराष्ट्र) चलभाष - 9922974455

सह संपादक

प्रा.अनघा सुरेश कूलकर्णी
हिंदी विभाग,
दगडोजीराव देशमुख,कला,वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,वालूज,औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

डॉ. सरला दवंडे
हिंदी विभाम,
दगडोजीराव देशमुख कला वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, वालूज,ता.गंगापूर, औरंगाबाद

प्रा.रेखा माधवराव सांभाळकर
हिंदी विभाग,
दगडुजीरा देशमुख कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,
वालूज, ता. गंगापूर, जि. औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

New Voices Publication, Aurangabad.

ISBN 978-93-82504 69-6

Scanned with OKEN Scanner

संत साहित्य में व्यक्त संवाद की भूमिका और महत्त्व
डॉ. मीरा निचळे
संत मीराबाई के साहित्य में सामाजिक चेतना
डॉ. संध्या मोहिते
संतकाव्य का धार्मिक एवं दार्शनिक पक्ष
शेळके संजीव भगवान
संत साहित्य की जीवन दृष्टि और वर्तमान समय
डॉ. अंजली तुकाराम कुंभारे
संत साहित्य में संत कबीरादास की : सामाजिक चेतना
प्रा. कु. अर्चना शरदराव कांबळे
संत कबीर के काव्य में व्यक्त गुरू महिमा
नितीन रंगनाथ गायकवाड
संत साहित्य की जीवन दृष्टि और वर्तमान समय में मानवी रिश्तें
डॉ. प्रा. येडले दत्ताजय लक्ष्मणराव
संत साहित्य की दार्शनिकता
प्रा. डॉ. प्रकाश सदाशिव सूर्यवंशी
संत साहित्य में मानवतावादी मूल्य
सौ. भाग्यश्री विलास कोष्टी
मध्यकालीन संत काव्य और लोक-दृष्टि
प्रा डॉ संजय नाईनवाड
संत साहित्य और मानवी संवाद! भूमिका और महत्व
डॉ. बुक्तरे मिलींदराज
संत साहित्य में मीरा की भक्ति भावना
प्रा.डॉ. वसंत माळी
संत साहित्य और मानवी संवाद भूमिका और महत्त्व
डॉ. मीना साहेबराव खरात

Scanned with OKEN Scanner

संत कबीर के काव्य में व्यक्त गुरू महिमा

नितीन रंगनाथ गायकवाड

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में भक्ति की दो धाराएँ 'सगुण' और 'निर्गुण' प्रवाहित हुई। सगुण धारा के अन्तर्गत राम-कृष्ण भक्ति की शाखाएँ आती है, निर्गुण के अन्तर्गत सन्त तथा सुफियों का काव्य आता है। 'आचार्य शुक्ल' ने नामदेव एवं कबिर द्वारा प्रवर्तित भक्ति-धारा को 'निर्गुण भक्ति साहित्य' तथा 'डॉ. रामकुमार वर्मा' ने इसे सन्त-काव्य परंपरा का नाम दिया। ज्ञानाश्रयी शब्द से यह भ्रान्ती उत्पन्न होती है कि इस धारा के कवियों ने ज्ञानतत्व को सर्वाधिक महत्व दिया होगा, जबकि वास्तव में इन्होंने प्रेम के सम्मुख समस्त ज्ञानराशि को तुच्छ माना है। भक्ति का आलम्बन सगुण आश्रय ही उपयुक्त है, अतः निर्गुण भक्ति साहित्य का नाम असमीचीन प्रतीत होता है। इस धारा के कवियों का विशेष दृष्टिकोण सन्त शब्द से भली-भांति व्यक्त होता है, अतः इस धारा को सन्त काव्य की संज्ञा देना अपेक्षाकृत संगत प्रतीत होता है।

श्री. परशुराम चतुर्वेदी इस बारें में कहते है-"सन्त शब्द उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिसने संत रूपी परम् तत्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से उपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो, जो सन्त स्वरूप नित्य सत्य सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका हो अथवा अपरोक्ष की उपलब्धी के फलस्वरूप अखण्ड सत्य में प्रतिष्टित हो गया हो वही सन्त है।"१

हिंदी के संत-कवियों की परंपरा 'कोमलकात पदावली' के गायक 'गीतगोविन्द' के अमर रचयिता सन्त 'जयदेव' से प्रारंभ होती है। जयदेव का समय सन् ११७९ माना जाता है। जयदेव के अनन्तर देश की हासमान परिस्थितियों के साथ समय-समय पर अनेक सन्तो का आविर्भाव हुआ। इन सन्तों ने अपने युग की विषमताओं को दूर करके एक स्वस्थ और कल्याणकारी समाज व्यवस्था का प्रयत्न किया। इन सन्तों में भाव-साम्य, विचार और चिंतन ऐक्य उपलब्ध होता है, फिर भी उनमें मौलिकता सर्वत्र विद्यमान है। हिंदी के सन्तों की परम्पराएँ बड़ी महान, बड़ी उच्च और भव्य है। इनके साहित्य में लोक कल्याण की भावना सर्वत्र प्रमुख और सजिव है। समाज की सेवा इन्होंने निष्पक्ष और निःस्वार्थ भावना से की।

सन्तों के साहित्य और आविर्भाव काल को काल-क्रमानुसार तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है, पुर्वकालीन सन्त, मध्ययुगीन सन्त और आधुनिक सन्त।

Scanned with OKEN Scanner

नानक, दादू, मलूक, सुन्दरदास, दरिया द्वै, बुल्लासाहब, यारीसाहब, चरणदास, सहजो, दयाबाई, मीरा, कबीर आदि कवि और कवयित्रियाँ इसी महान् व्यक्तित्व की परम्परा में अवतीर्ण हुए और अपने युग की जनता को कल्याणकारी ज्योति का दर्शन कराया। इन्होंने करनी के ऐक्य के द्वारा एक नवीन जीवन-दर्शन की स्थापना की जो सर्वथा स्पृहणीय रहा है और रहेगा।

"कबीरा खडा बाजार में चाहत सबकी खैर
ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर"२

कबीर एक उच्च प्राकृतिक प्रतिभा के कवि है। वास्तव में वे हिंदी भाषा के पहले कवि है जहाँ कविता धर्म, संप्रदाय और प्रचार से ही बाहर आकर अपना असली रूप ग्रहण करती है। कबीर की कविता के दो हिस्से है- पहला हिस्सा वेदांत-दर्शन की पृष्ठभुमि में रचा गया है। इसमें इश्वर की भक्ति, प्रार्थना, उपासना मुक्ति की अकांक्षा और शरणागति की अभिव्यक्ति हुई है। दूसरा हिस्सा तत्कालीन हिंदू-मुसलमान विरोध, धार्मिक पाखंड, कर्मकांड, संबंधी बुराइयों को लेकर है। कबीर अपनी कविता के इस हिस्से में मनुष्य को धार्मिक, सांप्रदायिक पाखंडो से उपर उठाकर, सर्वोपरि महत्व देते है। भारतीय संत-परंपरा में और विशेषतः निर्गुण संतों की परंपरा में गुरू को अत्यंत महत्व दिया गया है।

"कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लूंण।
जाति पांति कुल सब मिटे, नांव धरौगे कूंण।।"३

कबीर कहते है कि मुझे गौरवमय गुरूदेव के दर्शन हुए, उन्होंने अपने ज्ञान-स्वरूप में मुझे इसी प्रकार एक कर लिया, अपने में मिला लिया, जैसे आटे में नमक मिल जाता है। अर्थात गुरूदेव से इस प्रकार एक हो जाने पर मेरा स्वतंत्र अस्तित्व न रह गया और मेरे स्वतंत्र व्यक्तित्व के बोधक जाति-पाँति, कुल आदि सब नष्ट हो गये, अब तुम (संसार) मुझे गुरू से पृथक मानने के लिए किस नाम से पुकारोंगे? भाव यह है कि अब मेरा गुरू के ज्ञानस्वरूप के साथ ऐक्य स्थापित हो गया है। इस अंग में कबीर ने गुरू की महत्ता का वर्णन किया है। उन्होंने बताया है कि इस संसार में गुरू के समान कोई हितैषी और अपना सगा नहीं है, इसलीए मै अपना तन-मन और सर्वस्व गुरू के प्रति समर्पण करता हुँ जो क्षणभर में ही अपनी कृपा से मनुष्य को देवता बनाने में समर्थ है। गुरू की महिमा अनंत है और इसे वही समझते है जिसके ज्ञान चक्ष खुल गये हों। गुरू ही अपने शिष्य के अंतर की ज्याति को प्रज्वलित करने में समर्थ होते है, वही सच्चा शुरवीर है गुरू

Scanned with OKEN Scanner

का उपदेश कानो में पडते ही शिष्य समस्त प्रकार के सांसारिक बंधनो से मुक्त हो ज
है। ऐसा गुरू भगवान की कृपा से ही प्राप्त होता है। किंतु दुर्भाग्यवशता जिस व्यक्ति
विद्वान गुरू प्राप्त नहीं होता, उस शिष्य की कभी मुक्ति नहीं हो सकती, बल्कि वह
अपने साथ अपने शिष्य को भी लेकर डुब जाता है। गुरू की वाणी ही उस संशय को न
करने मे समर्थ है, जो समस्त संसार को अपने कठोर पाश में आबद्ध किऐ हुए है। कि
केवल गुरू का मिलन ही मुक्ति के लिए पर्याप्त नहीं है, बल्कि शिष्य के शुद्ध अंतःकरण
की भी उतनी ही आवश्यकता है, क्योंकि यदि शिष्य हृदय में किसी प्रकार का विकार है,
तो गुरू की कृपा से उसे विशेष कोई लाभ नहीं होगा। अपनी इसी महत्ता के कारण गुरू
का स्थान भगवान के स्थान के बराबर संत कबीर मानते है।

"नां गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेलया दाव।
दून्यं बड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव।।"४

वे कहते है कि, न तो सद्गुरू ही मिला और न शिष्य। वास्तविक परिभाषा में शिष्य अर्थात् ज्ञानाभिलाषी ही था। दोनों ज्ञान के नाम पर लालच का दाँव खेलते रहें, एक दूसरें को धोके में डालने का प्रयास करते रहे और इस प्रकार दोनों मँझधार में ही डुब गये, तट-लक्ष्य-तक नहीं पहुँच पाये, जैसे कोई पत्थर की नाव का आश्रय लेकर सागर तैरने का प्रयास करें तो बीच ही में डुब जाय। जिन लोगों को गुरू की प्राप्ती नहीं होती, तो चाहे जितनी भी तप साधना करें किंतु उसका कोई फल नहीं होता। सर्व प्रकार से समर्थ गुरू से ही परिचय हो जाने पर ही समस्त सांसारिक और मानसिक दुःख नष्ट हो जाते है और आत्मा निर्मल होकर प्रभु-भक्ति में तल्लीन हो जाती है। अतः गुरू की महिमा अनंत और अवर्णनीय है। भाषा के विषय में भी संत कबीर का अपना आदर्श है। कबीर काव्य की अभिव्यक्ति के लिए संस्कृत गर्भित भाषा की तुलना में लोकभाषा, या दैनिक जीवन में बोल-चाल की भाषा को अधिक उपयोगी समझते थे।

संक्षेपतः

कबीर के अनुसार धर्म का स्वरूप सत्य के प्रति किसी व्यक्ति की पूर्ण आस्था, उसके साथ तादात्म की मनोवृत्ति तथा उसी के आदर्शो पर निश्चित व्यवहार की प्रवृत्ति में भी देखा जा सकता है। "कबीर की क्रान्ति बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी थी। उन्हें परलोक जैसे काल्पनिक प्रदेश के प्रति विश्वास न था। वे लोक को ही अपने आदर्शो एवं प्रभाव द्वारा स्वर्ग बनाने में विश्वास रखतें थे। कबीर ग्रन्थ-रचना और काव्य-लेखन को व्यर्थ परिश्रम समझते थे, क्योंकि इसके द्वारा कभी-भी कोई परमतत्व को प्राप्त करनेवाला पंडित नहीं बन सकता।"५

Scanned with OKEN Scanner

किसी के भी मन में गुरू के प्रति जब तक आस्था निर्माण नहीं होती तब तक कोई भी शिष्य दीक्षित नही बन सकता। कबीर प्राकृत विषयों पर काव्य रचना के लिए लेखनी उठाने के बहुत विरुद्ध थे।

संदर्भः

१) हिंदी साहित्यः युग और प्रतृत्तियाँ, डॉ. शिवकुमार वर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, पृ.सं. १२९-१३०
२) हिन्दी सन्त-साहित्य, त्रिलोकीनारायन दीक्षित, राजकमल प्र.दिल्ली, पृ.सं.३०
३) हिन्दी सन्त-साहित्य, त्रिलोकीनारायन दीक्षित, राजकमल प्र.दिल्ली, पृ.सं.९०
४) हिन्दी सन्त-साहित्य, त्रिलोकीनारायन दीक्षित, राजकमल प्र.दिल्ली, पृ.सं.९२
५) हिन्दी सन्त-साहित्य, त्रिलोकीनारायन दीक्षित, राजकमल प्र.दिल्ली, पृ.सं.२०६

Scanned with OKEN Scanner